* श्रीः *

हरिदास-संस्कृत-ग्रन्थमाला

१२५

गङ्गालहरी

'निर्मला'नामकभाषाटीकासहिता ।

प्रकाशक—

चौखम्बा—संस्कृत—पुस्तकालय,

बनारस सिटी ।

THE

HARIDAS SANSKRIT SERIES

125.

THE

GANGĀ LAHARĪ

OF

PANDITRĀJA S'RĪ JAGANNĀTHA

WITH

NIRMALĀ HINDI COMMENTARY

BY

PT. SRI VIS'VES'VARA JHĀ

पण्डितराजश्रीजगन्नाथविरचिता

गङ्गालहरी

पण्डित श्रीविश्वेश्वरझा शास्त्रिकृतनिर्मला-
नामकाहिन्दीटीकासहिता ।

PUBLISHED BY

JAYA KRISHNA DAS HARIDAS GUPTA

Chowkhambâ Sanskrit Series Office,

Benares City.

1940

॥ श्रीः ॥

प्राक्कथन

सज्जनो !

आज आप लोगोंके करकमलोंमें 'गंगालहरी" का हिन्दी टीका सहित संस्करण देते हुए मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है। यों तो आपने गंगाजीके विषयमें अनेकों स्तवन पढ़े होंगे, किन्तु, पण्डितराज जगन्नाथ कृत गंगालहरीके समान सम्भव है क एक भी स्तवन न पढ़ा हो। अस्तु ; अब मैं आपके सम्मुख दो शब्द गंगाजीके माहात्म्यके विषयमें तथा एक शब्द पण्डित जगन्नाथजीके विषयमें कह देना अपना परम कर्तव्य समझता हूं।

हमारे शास्त्रोंके अनुसार श्रीगंगाजी नदी नहीं हैं अपि तु साक्षात् पतितपावनी देवी स्वरूप हैं। कहाभी है 'गंगादर्शनात् मुक्तिः' अर्थात् गंगाजीके दर्शनमात्रसे मनुष्यकी मुक्ति हो जाती है। अन्य श्लोकमें यह भी पाया जाता है कि गंगाके स्नानसे मनुष्यके पितृलोग भी मुक्ति पा जाते हैं। अतः ऐसी कथाओंका श्रवण कर आपका मन अवश्य जानना चाहता होगा जिन गंगामें ऐसी शक्ति है उनका उद्‌गम कैसे हुआ ? अतिसंक्षेपमें श्रीगंगाजीके उद्गमकी कथा यह है कि राजा सगरके साठ हजार पुत्र थे उन लोगों ने अपने पिताके अश्वमेध यज्ञके घोड़े को कपिलमुनिके पास(१)बंधा देखकर मुनि पर बड़ा रोष प्रकट किया मुनिने उनको शाप दे दी कि "भस्म हो जाओ" अतः मुनिकी शाप से वो सब भस्म हो गये उनके तारनेके लिए उन साठ हजार पुत्रोंके सौतेले भाईने तत्पश्चात् उनके लड़केने फिर पोतेने (भागीरथने) (तीन पीढ़ी तक) तपस्या करके गंगाजी को प्रसन्न करके भूलोकमें लाकर अपने भाइयोंको तारा तथा प्राणीमात्रका कल्याण किया। अब आपका चित्त यह भी ज्ञात करनेको निश्चय लालायित होगा कि पण्डितराज कौन थे ? पण्डितराजजीका आंशिक जीवन चरित यह है कि—यवन कालमें पण्डितराज जगन्नाथ पैदा हुए थे। आप बड़े धर्मिष्ठ, कर्मिष्ठ, सदाचारी, सुशील, नियमपालक, थे आपने कई ग्रन्थ रचे हैं जिनकी गणना संस्कृत साहित्यमें उच्च कोटि के साहित्यमें की जाती है। ऐसी किंवदन्ती है कि आपके ऊपर कोई ऐसा अभियोग लगाया गया था जिस कारण काशी का पण्डित समाज आप पर रुष्ट हो उठा था। परन्तु, आप गंगाजी के बड़े भक्त थे और इसीसे आपने पण्डितों के रुष्ट होने पर गंगाजीकी प्रार्थना की (वही प्रार्थना गंगालहरी के नाम से प्रसिद्ध हुई)। कहा जाता है कि आपके प्रार्थना करने पर गंगाजी एक श्लोक पर एक सीढ़ी के हिसाब से बावन सिढ़ियां बढ़ आई।

ऐसी पतित पावनी गंगाजी की स्तुति पढ़ने की भला किसे अभिलाषा न होगी। इसी हेतुसे मैंने इसका (गंगालहरी का) हिन्दी टीका युक्त संस्करण किया ताकि थोड़ी बहुत हिन्दी जाननेवाले भी इसे पढ़कर अपने मंगलका मार्ग समझ सकें।

---

(१) घोड़े को इन्द्रने चुराकर वहां बांध दिया था।

॥ श्रीः ॥

पण्डितराजजगन्नाथकृता—

गङ्गालहरी

समृद्धं सौभाग्यं सकलवसुधायाः किमपित-
न्महैश्वर्यं लीलाजनितजगतः खण्डपरशोः ॥
श्रुतीनां सर्वस्वं सुकृतमथ मूर्तं सुमनसां
सुधासौन्दर्यं ते सलिलमशिवं नः शमयतु ॥ १ ॥

भागीरथीन्नमस्कृत्य सर्वकिल्विषहारिणीम् ।
जगन्नाथकृतेः कुर्वे भाषाटीकां सुखावहाम् ॥ १ ॥

अथ "निर्मला" टीका—

हे गङ्गे ! समस्त पृथ्वीके पूर्ण सौभाग्य रूप तथा लीला पूर्वक संसारको उत्पन्न करनेवाले शङ्करजीकी महाविभूति तथा वेदों का तत्त्व एवं देवताओंके पुण्यमूर्ति और अनिर्वचनीय अमृतके समान सुन्दर (मधुरस्वादयुक्त शुभ्र) आपका जल हमलोगोंके अशुभको नाश करे ॥ १ ॥

दरिद्राणां दैन्यं दुरितमथ दुर्वासनहृदां
द्रुतं दूरीकुर्वन् सकृदपि गतो दृष्टिसरणिम् ।
अपि द्रागाविद्याद्रुमदलनदीक्षागुरुरिह
प्रवाहस्ते वारां श्रियमयमपारां दिशतु नः ॥ २ ॥

हे माता ! जो एकबार दृष्टि गोचर होनेसे ही दरिद्रों की दरिद्रताको तथा पापियोंके पापको शीघ्र ही नाश करता हुआ शीघ्र ही अविद्यारूपी पेड़के नाश करनेमें दीक्षागुरु तुम्हारे जलका प्रवाह है वह प्रवाह इसलोकमें हम लोगोंको अपार लक्ष्मी दे ॥ २ ॥

उद्यन्मार्तण्डस्फुटकपटहेरम्बजननी
कटाक्षव्याक्षेपक्षणजनितसंक्षोभनिवहाः।
भवन्तु त्वङ्गन्तो हरशिरसि गङ्गातनुभुव-
स्तरङ्गाः प्रोत्तुङ्गा दुरितभयभङ्गाय भवताम्॥ ३॥

उदय होते हुए सूर्य के छलसे गणेश माता पार्वतीजीके कटाक्ष फेंकनेसे क्षण भरके लिए हलचल करनेवाली महादेवजीके शिर पर अत्यन्त ऊँची चलायमान गङ्गाजीकी लहरें आप लोगोंके पाप तथा भयको अथवा पापरूपीभयको नाश करें॥ ३॥

तवालम्बादम्ब स्फुरदलघुगर्वेण सहसा
मया सर्वेऽवज्ञासरणिमथ नीताः सुरगणाः।
इदानीमौदास्यं भजसि यदि भागीरथि तदा
निराधारः केषामिह कथय हा रोदिमि पुरः॥४॥

हे माता! आपके ही भरोसे पर अत्यन्त गर्वित होकर मैंने, बिना विचारे, दूसरे देवताओंको नहीं भजा इसलिये हे गङ्गे! यदि आप इस समय उदासीनता धारण करती हैं (मुझे उद्धार नही करेंगी) तो हाय! बताइये निराश्रय मैं अब किसके आगे रोऊँ॥ ४॥

स्मृतिं याता पुंसामकृतसुकृतानामपि च या
हरत्यन्तस्तन्द्रां तिमिरमिव चन्द्रांशुसरणिः।
इयं सा ते मूर्तिः सकलसुरसंसेव्यसलिला
ममान्तःसन्तापं त्रिविधमपि पापं च हरताम्॥५॥

हे माता! सभी देवताओंसे संसेवित पुण्यहीन लोगोंको भी स्मरण करने ही से अन्धकार नाशक चन्द्रमाकी तरह सब अज्ञान नाश करने वाली आपकी प्रवाह रूपी ये मूर्ति मेरे अन्तः सन्ताप (कायिक, वाचिक, मानसिक) और त्रिविध (आधिदैविक, आध्यात्मिक, आधिभौतिक) पापोंका हरण करे॥ ५॥

अपि प्राज्यं राज्यं तृणमिव परित्यज्य सहसा
विलोलद्वानीरं तव जननि तीरं श्रितवताम् ।
सुधातः स्वादीयः सलिलभरमातृप्ति पिबतां
जनानामानन्दः परिहसति निर्वाणपदवीम् ॥ ६ ॥

हे माता ! बहुत बड़े बड़े राज्यको भी तृणके समान समझकर एकाएक छोड़कर झूम रहे हैं वेतोंके पेड़ जहाँ पर ऐसे आपके तीर का आश्रय करते हुए अमृतसे भी बढ़कर स्वादिष्ट इस गङ्गाजल को भरपेट पीने वाले लोगोंका आनन्द मोक्षको भी हंसता है ॥ ६ ॥

प्रभाते स्नातीनां नृपतिरमणीनां कुचतटी
गतो यावन्मातर्मिलति तव तोयैर्मृगमदः ।
मृगास्तावद्वैमानिकशतसहस्रैः परिवृताः
विशन्ति स्वच्छन्दं विमलवपुषो नन्दनवनम् ॥७॥

हे माता ! प्रातः काल आपके जलमें नहाती हुईं रानियोंके स्तनोंमें लगी हुई कस्तूरी ज्यों ही आपके जलमें मिलती है त्यों ही वे मृग सब (जिनके नाभिकी कस्तूरी रहती है) भव्य शरीर धारण कर लाखों देवताओंके बीच विमान पर बैठ कर, स्वच्छन्द, नन्दन वन (इन्द्रके प्रधान बगीचेमें) चले जाते हैं ॥ ७ ॥

स्मृतं सद्यः स्वान्तं विरचयति शान्तं सकृदपि
प्रगीतं यत्पापं झटिति भवतापं च हरति ।
इदं तद्गङ्गेति श्रवणरमणीयं खलु पदं
मम प्राणप्रान्ते वदनकमलान्तर्विलसतु ॥ ८ ॥

जिसके स्मरण मात्रसे मनोद्विग्नता दूर हो जाती है तथा एक-बारके उच्चारणसे ही संसारके सभी दुःख और पाप नष्ट हो जाते हैं, ऐसे श्रवण सुखदायी यह 'गङ्गा' शब्द मृत्युके समयमें भी मेरे मुंहसे निकले ॥ ८ ॥

यदन्तःखेलन्तो बहुलतरसन्तोषभरिता
न काका नाकाधीश्वरनगरसाकाङ्क्षमनसः ।
निवासाल्लोकानां जनिमरणशोकापहरणं
तदेतत्ते तीरं श्रमशमनधीरं भवतु नः ॥ ९ ॥

हे गङ्गे ! इन्द्रपुरीको भी नहीं चाहने वाले कौए अत्यन्त सन्तोषपूर्ण होकर जिस तट पर खेलते हैं और जिसपर निवास करनेसे लोगोंका जन्म मरण शोक दूर हो जाता है ऐसा आपका यह तीर मेरे संसाररूपी शोकको नाश करने में समर्थ हो ॥ ९ ॥

न यत्साक्षाद्वेदैरपि गलितभेदैरवसितं
न यस्मिन् जीवानां प्रसरति मनोवागवसरः ।
निराकारं नित्यं निजमहिमनिर्वासिततमो
विशुद्धं यत्तत्त्वं सुरतटिनि तत्त्वं न विषयः ॥१०॥

हे गङ्गे ! निर्भेद (अद्वैतप्रतिपादक) वेदने भी जिसका भेद नहीं पाया और जिसमें प्राणियोंके मन तथा वाणीका प्रवेश नहीं है और जिसने स्वकीय महात्म्यसे अविद्या रूपी अन्धकारको नष्ट कर दिया है ऐसा निराकार नित्य विशुद्ध तत्त्व तुम हो, तुमसे अन्य कोई विषय नहीं है ॥ १० ॥

महादानैर्ध्यानैर्बहुविधवितानैरपि च यन्
न लभ्यं घोराभिः सुविमलतपोराशिभिरपि ।
अचिन्त्यं तद्विष्णोः पदमखिलसाधारणतया
ददाना केनासि त्वमिह तुलनीया कथय नः ॥११॥

हे माता ! जो विष्णुका अचिन्त्य पद महादानसे ध्यानसे अनेक विधानसे तथा घोर अत्यन्त विमल तपस्याओंसे भी प्राप्त नहीं हो सकता उसे सर्वसाधारण रीतिसे हमलोगोंको देनेवाली तुम्हारी बराबरी किससे की जाय सो कहो (अर्थात् तुम्हारी बराबरी करने वाला कोई भी नहीं है ॥ ११ ॥

नृणामीक्षामात्रादपि परिहरन्त्या भवभयं
शिवायास्ते मूर्तेः क इह महिमानं निगदतु ।
अमर्षम्लानायाः परममनुरोधं गिरिभुवो
विहाय श्रीकण्ठः शिरसि नियतं धारयति याम् ॥१२॥

हे गङ्गे! कल्याणकारिणी तेरी मूर्तिकी (गङ्गानदीकी) महिमाका वर्णन इस संसारमें कौन कर सकता है। जिसके दर्शनकी इच्छासे ही मनुष्य भवबाधासे रहित हो जाते हैं और जिसको श्रीशङ्करजी क्रोधसे म्लानमुख पार्वतीजीके अत्यन्त अनुरोधको भी न मानकर हमेशाके लिये अपने शिरपर धारण किये हैं ॥ १२ ॥

विनिन्द्यान्युन्मत्तैरपि च परिहार्याणि पतितै-
रवाच्यानि व्रात्यैः सपुलकमपास्यानि पिशुनैः ।
हरन्ती लोकानामनवरतमेनांसि कियतां
कदाप्यश्रान्ता त्वं जगति पुनरेका विजयसे ॥१३॥

हे माता! जिन पापोंको पागल लोग भी अत्यन्त निन्दित समझते हैं। तथा जिन पापोंको पतित लोग भी परित्याग करते हैं। तथा संस्कार हीन बालक भी जिन पापोंका नाम तक नहीं लेते हैं तथा दुर्जन लोग भी जिन पापोंसे रोमाञ्चित हो जाते हैं ऐसे कितने ही लोगोंके पापोंको अकेले निरन्तर नाश करती हुई तुझे थकावट भी नहीं आती और तू अकेले ही संसार में विजय पाती है ॥१३॥

स्खलन्ती स्वर्लोकादवनितलशोकापहृतये
जटाजूटग्रन्थौ यदसि विनिबद्धा पुरभिदा ।
अये निर्लोभानामपि मनसि लोभं जनयतां
गुणानामेवायं तव जननि दोषः परिणतः ॥१४॥

हे माता! पृथ्वीतल निवासियोंके शोकको दूर करनेके लिए स्वर्गलोकसे आई हुई तुम श्री शङ्करजीके जटाजूटके गाँठमें बँध

गई हो तो निर्लोभियोंके मनमें भी लोभ उत्पन्नकरानेवाले तेरे गुणों से बन्धनरूपी दोष उत्पन्न हुआ है ॥ १४ ॥

जडानन्धान्पङ्गून्प्रकृतिबधिरानुक्तिविकलान्
ग्रहग्रस्तानस्ताखिलदुरितनिस्तारसरणीन् ।
निलिम्पैर्निर्मुक्तानपि च निरयान्तर्निपततो
नरानम्ब त्रातुं त्वमिह परमं भेषजमसि ॥ १५ ॥

हे माता ! इस असार संसारमें (अज्ञानी) ज्ञानशून्य, अन्धे, पङ्गुल, जन्मसे बहिरे, गूंगे, ग्रहोंसे दुःखी तथा जिनके पापोंको हरण करनेमें कोई भी उपाय नहीं है और देवताओंसे भी अरक्षणीय तथा नरकमें गिराये गये ऐसे पातकी मनुष्योंको पापरूपी रोगसे मुक्त करनेके लिए तू ही अत्युत्तम औषधि है ॥ १५ ॥

स्वभावस्वच्छानां सहजशिशिराणामयमपा-
मपारस्ते मातर्जयति महिमा कोऽपि जगति ।
मुदा यं गायन्ति द्युतलमनवद्यद्युतिभृतः
समासाद्याद्यापि स्फुटपुलकसान्द्राः सगरजाः॥१६॥

हे माता ! स्वभावसे ही निर्मल और स्वभावसे ही शीतल तेरे जलकी यह अपार (असीम) विलक्षण महिमा संसारमें प्रख्यात है। जिसकी महिमाको आज स्वर्गमें बैठे हुए प्रशंसनीय कान्तिवाले सगरके साठ हज़ार पुत्र अत्यन्त रोमाञ्चित होकर बड़े हर्षसे गान कर रहे हैं ॥ १६ ॥

कृतक्षुद्रैनस्कानथ झटिति सन्तप्तमनसः
समुद्धर्तुं सन्ति त्रिभुवनतले तीर्थनिवहाः ।
अपि प्रायश्चित्तप्रसरणपथातीतचरितान्
नरान्दूरीकर्तुं त्वमिव जननि त्वं विजयसे ॥१७॥

हे माता ! छोटे छोटे पापोंको करके तुरत पश्चात्ताप करने

वालोंको उद्धार करनेके लिए तीनों भुवनमें बहुतसे (गोदावरी आदि) तीर्थ हैं। परन्तु जिन पापोंका प्रायश्चित्त ही नही है ऐसे भी पापोंको करनेवाले लोगोंको उद्धार करनेके लिए अपने समान तू ही है अर्थात दूसरा कोई भी नही है ॥ १७ ॥

निधानं धर्माणां किमपि च विधानं नवमुदां
प्रधानं तीर्थानाममलपरिधानं त्रिजगतः।
समाधानं बुद्धेरथ खलु तिरोधानमधियां
श्रियामाधानं नः परिहरतु तापं तव वपुः ॥ १८ ॥

हे माता ! धर्मका स्थान, नवीन हर्षोंका जनक, समस्त तीर्थोंमें प्रधान, तीनों जगतके पहननेकी साफ धोती, बुद्धिके समाधान, निर्बुद्धिका आवरण और लक्ष्मीका घर इत्यादि गुणविशिष्ट तेरा यह शरीर (जल) हम लोगोंके तापको नाश करे ॥ १८ ॥

पुरो धावं धावं द्रविणमदिराघूर्णितदृशां
महीपानां नानातरुणतरखेदस्य नियतम्।
ममैवायं मन्तुः स्वहितशतहन्तुर्जडधियो
वियोगस्ते मातर्यदिह करुणातः क्षणमपि ॥ १९ ॥

हे माता ! धनरूपी मदिरासे टेढी नजर वाले राजाओंके आगे दौड़ दौड़ कर अनेक प्रकारके नये नये कष्टोंको सहने वाला सैकड़ों अपना हित कार्यको नाशकारक जड़मतिवाला मेरा ही यह अपराध है जो कि तुझसे वियोग हुआ अर्थात् (तुम्हारे जलमें स्नानादि नहीं किया) अतः क्षणमात्रके लिए भी मेरे पर दया करो (जिससे कि तेरे तट पर ही प्राण छोड़ दूँ) ॥ १९ ॥

मरुल्लीलालोलल्लहरिलुलिताम्भोजपटली-
स्खलत्पांसुव्रातच्छुरणविसरत्कौङ्कुमरुचि।
सुरस्त्रीवक्षोजक्षरदगरुजम्बालजटिलं
जलं ते जम्बालं मम जननजालं जरयतु ॥ २० ॥

हे माता ! वायुके चलनेसे चञ्चल लहरोंसे हिलते हुए कमलों से गिरे हुए परागोंके मिलजानेसे केसरिया रङ्ग का तथा देववनिताओंके स्तनसे गिरा हुआ कृष्णचन्दन पङ्कसे जटिल शैवाल युक्त तेरा जल मेरे (संसार रूपी) जालको नाश करे ॥ २० ॥

समुत्पत्तिः पद्मारमणपदपद्मामलनखा-
न्निवासः कन्दर्पप्रतिभटजटाजूटभवने ।
अथायं व्यासङ्गो हतपतितनिस्तारणविधौ
न कस्मादुत्कर्षस्तव जननि जागर्ति जगति ॥२१॥

हे माता ! संसारमें सबसे अधिक आपका उत्कर्ष क्यों न जगमगाता रहे। क्यों कि आपकी उत्पत्ति लक्ष्मीपति श्री विष्णुके चरणारविन्दके स्वच्छ नखसे है। कामदेवके शत्रु शङ्करजीका जटाजूट रूपी भवन ही आपका मकान है तथा मरनेवाले पापियोंको उद्धार करना ही आपका काम है ॥ २१ ॥

नगेभ्यो यान्तीनां कथय तटिनीनां कतमया
पुराणां संहर्तुः सुरधुनि कपर्दोऽधिरुरुहे ।
कया वा श्रीभर्तुः पदकमलमक्षालि सलिलै-
स्तुलालेशो यस्यां तव जननि दीयेत कविभिः॥२२

हे माता ! पहाड़ोंसे आती हुई वे कौनसी नदियां हैं जो कि श्री शङ्करजीके जटाजूटमें बैठी हैं तथा किसने लक्ष्मीपति श्री विष्णुभगवान्के पादारविन्दको अपने जलसे धोया है। जिससे कि तेरी कणमात्र भी उपमा उन नदियोंमें कवि लोग देवें ॥ २२ ॥

विधत्तां निःशङ्कं निरवधिसमाधिं विधिरहो
सुखं शेषे शेतां हरिरविरतं नृत्यतु हरः ।
कृतं प्रायश्चित्तैरलमथ तपोदानयजनैः
सवित्री कामानां यदि जगति जागर्ति भवती॥२३॥

हे माता ! यदि संसारमें सब कामनाओंकी पूर्ति करनेवाली तू जागती है तो ब्रह्मा अपरिमित समय तक निःशङ्क होकर सोवें और भगवान् विष्णु भी सुखपूर्वक निश्चिन्त होकर (शेष शय्या पर) सोवें तथा भगवान् श्री शङ्करजी भी यथेच्छ निरन्तर नृत्य किया करें। एवं प्रायश्चित्तकी भी कोई आवश्यकता नहीं न तो कठिन चान्द्रायणादि तप गजाश्वादि दान देवयज्ञादिकी ही कोई आवश्यकता है। (अर्थात तुझसे ही सब सफल हो जायगा) ॥ २३ ॥

अनाथः स्नेहार्द्रां विगलितगतिः पुण्यगतिदां
पतन् विश्वोद्धर्त्रीं गतविगलितः सिद्धभिषजम् ।
सुधासिन्धुं तृष्णाकुलितहृदयो मातरमयं
शिशुः सम्प्राप्तस्त्वामहमिह विदध्याःसमुचितम्२४

हे माता ! मैं अनाथ बालक हूँ तू अत्यन्त दया करने वाली ाता है मैं गतिहीन हूँ तू सद्गति देनेवाली है मैं पतित हूँ तू विश्व-ा उद्धारकरने वाली है मैं रोगपीडित हूँ तू सिद्ध औषधि है ेरा हृदय प्यासले व्याकुल है तू अमृत समुद्र है ऐसी दशा में तुम्हारे शरणमें मैं आया हूँ जो उचित हो सो करो ॥ २४ ॥

विलीनो वै वैवस्वतनगरकोलाहलभरो
गता दूता दूरं क्वचिदपि परेतान्मृगयितुम् ।
विमानानां व्रातो विदलयति वीथीर्दिविषदां
कथा ते कल्याणी यदवधि महीमण्डलमगात् ॥२५॥

हे माता ! इस भूमण्डलमें जबसे कल्याणकारिणी तेरी कथा ने लगी है तभीसे यमपुरमें पापियोंके कठिनदण्डका कोलाहल िलकुल मिट गया (अर्थात अब तेरी कथा श्रवणसे निष्पाप होकर ोग पापदण्ड नहीं पाते) और यमदूत लोग भी पापियोंको दूर देशों खोजनेके लिए चले गये (जहाँ तेरी कथा लोगोंको ज्ञात नहीं है) म्हारी कथाके प्रतापसे विमानोंका आगमन इतना बढ़ गया है कि वताओंके मार्ग बिलकुल विदलित (उखड़ पुखड़) गये हैं ॥ २५ ॥

स्फुरत्कामक्रोधप्रबलतरसञ्जातजटिल-
ज्वरज्वालाजालज्वलितवपुषां नः प्रतिदिनम्।
हरन्तां सन्तापं कमपि मरुदुल्लासलहरी-
च्छटाचञ्चत्पाथः कणसरणयो दिव्यसरितः ॥२६॥

आकाशनदी श्री गङ्गाजीमें हवाके चलनेसे चलायमान लहरियों से उड़ते हुए जलकी कणिकायें प्रतिदिन हमलोगों को अत्यन्त काम और क्रोधके प्रबल पराक्रमसे उत्पन्न विकराल ज्वरकी ज्वालाओंसे दग्ध अङ्गोंके सन्ताप (दुःख) को नाश करें ॥ २६ ॥

इदं हि ब्रह्माण्डं सकलभुवनाभोगभवनं
तरङ्गैर्यस्यान्तर्लुठति परितस्तिन्दुकमिव।
स एष श्रीकण्ठप्रविततजटाजूटजटिलो
जलानां सङ्घातस्तव जननि तापं हरतु नः ॥२७॥

हे माता! जिस जल समूहके मध्यमें चौदहो भुवनके पूर्ण सुखका भवन यह ब्रह्माण्ड भी लहरोंके वेगसे चारो तरफ तिन्दुकके समान अथवा गेंदके समान लुढकता है ऐसा श्री शङ्करजीका विस्तीर्ण जटाजूटसे जटिल तेरा जल हमलोगोंके पापों को नाश करे ॥ २७ ॥

त्रपन्ते तीर्थानि त्वरितमिह यस्योद्धृतिविधौ
करं कर्णे कुर्वन्त्यपि किल कपालिप्रभृतयः।
इमं तं मामम्ब त्वमियमनुकम्पार्द्रहृदये
पुनाना सर्वेषामघमथनदर्पं दलयसि ॥ २८ ॥

हे परमदयालु माता! इस संसारमें गोदावरी आदि तीर्थ जिस महापतितको उद्धार करनेमें शर्मातो हैं और शिव प्रभृति भी कान मुन्दकर जिसकी प्रार्थनाको अस्वीकार करते हैं ऐसे महापतित मुझ जगन्नाथ को उद्धार करके उन सबोंके पापनाश करनेके गर्वको चूर्ण करदे ॥ २८ ॥

श्वपाकानां व्रातैरमितविचिकित्साविचलितै-
विमुक्तानामेकं किल सदनमेनःपरिषदाम्।
अहो मामुद्धर्तुं जननि घटयन्त्याः परिकरं
तव श्लाघां कर्तुं कथमिव समर्थो नरपशुः ॥२९॥

हे माता! जिन पापोंको चाण्डालोंने भी अत्यन्त संशय युक्त होकर (इन पापोंका प्रायश्चित भी नहीं है। यह जानकर) परित्याग कर दिया उन पापसमूहोंका घर मुझ ऐसे महापापीको उद्धार करनेके लिए अगर तू कमर बाँधी है तो आश्चर्य है कि पशुतुल्य मैं तुम्हारी स्तुति किसतरह कर सकता हूँ॥ २९॥

न कोऽप्येतावन्तं खलु समयमारभ्य मिलितो
यदुद्धारादाराद्भवति जगतो विस्मयभरः।
इतीमामीहां ते मनसि चिरकालं स्थितवती-
मयं सम्प्राप्तोऽहं सफलयितुमम्ब प्रणय नः॥३०॥

हे माता! चिरकालसे तेरे मनमें ऐसी इच्छा थी कि कोई ऐसा महापापी मनुष्य मिले जिसके उद्धार करनेसे संसार भरको आश्चर्य हो परन्तु आजतक कोई ऐसा तुम्हे नहीं मिला आज उसी अभिलाषाको पूर्ति करानेके लिए यह (जगन्नाथ) तेरे पास आया है मुझ पर दया करो (मेरा उद्धार करो)॥ ३०॥

श्ववृत्तिव्यासङ्गो नियतमथ मिथ्याप्रलपनं
कुतर्केष्वभ्यासः सततपरपैशुन्यमननम्।
अपि श्रावंश्रावं मम तु पुनरेवं गुणगणा-
नृते त्वत्को नाम क्षणमपि निरीक्षेत वदनम्॥३१॥

हे माता! कुत्तेकी वृत्ति धारण करना और हमेशा झूठ बोलना परस्त्रीगमनादि कुकर्मोंका विचार करना और हमेशा दूसरेकी चुगली करना ऐसे ऐसे मेरे अवगुणोंको सुन सुन कर तेरे सिवाय कौन ऐसा

है जो क्षणभर भी मेरे मुखको देखे (कुपुत्रके अपराधको क्षमा करने की शक्ति माताको ही होती है) ॥ ३१ ॥

विशालाभ्यामाभ्यां किमिह नयनाभ्यां खलु फलं
न याभ्यामालीढा परमरमणीया तव तनुः ।
अयं हि न्यक्कारो जननि मनुजस्य श्रवणयो-
र्ययोर्नान्तर्यातस्तव लहरिलीलाकलकलः ॥ ३२ ॥

हे माता ! इस संसारमें जिनके आँखोने तेरे परम रमणीय शरीर का दर्शन नहीं किया उन विशाल आँखोसे ही क्या और जिन कानोंने तेरी लहरका कलकल शब्द नही सुना उन कानोंको भी धिक्कार है। (मेरा न तो कर्ण ही व्यर्थ है न तो नेत्र ही व्यर्थ है अतः मुझे उद्धार करो) ॥ ३२ ॥

विमानैः स्वच्छन्दं सुरपुरमयन्ते सुकृतिनः
पतन्ति द्राक्पापा जननि नरकान्तः परवशाः ।
विभागोऽयं तस्मिन्नशुभमयमूर्तौ जनपदे
न यत्र त्वं लीलादलितमनुजाशेषकलुषा ॥३३॥

जहाँ पर अपनी लीलासे मनुष्यके समस्त पापोंकी नाशिनी तू नहीं है अशुभ समूहके मूर्तिरूप उस स्थानमें यह विभाग है कि पुण्यात्मा लोग अपनी इच्छानुसार विमानों पर चढकर स्वर्ग जाते है और पापीलोग पराधीन होकर (यमदूत से पकड़े जानेपर) लाचार होकर शीघ्र नरकमें गिरते हैं (अर्थात् तू तो पापियोंको भी उद्धार करदेती है तेरे यहाँ पापी पुण्यात्माका विचार ही नहीं होता) ॥३३॥

अपि घ्नन्तो विप्रानविरतमुशन्तो गुरुसतीः
पिबन्तो मैरेयं पुनरपहरन्तश्च कनकम् ॥
विहाय त्वय्यन्ते तनुमतनुदानाध्वरजुषा-
मुपर्यम्ब क्रीडन्त्यखिलसुरसम्भावितपदाः ॥३४॥

हे माता ! ब्राह्मणोंको मारनेवाले, गुरुजनोंकी पतिव्रता स्त्रियों के साथ व्यभिचारकी अभिलाषा करने वाले, मदिरा पीनेवाले और सुवर्णकी चोरी करने वाले मनुष्य मरण के समय तेरेजलमें शरीर-त्याग कर महादान, यज्ञादि फलप्राप्त लोकसे भी बढ़कर उत्तम लोकको प्राप्त करते हैं ॥ ३४ ॥

अलभ्यं सौरभ्यं हरति नियतं यःसुमनसां
क्षणादेव प्राणानपि विरहशस्त्रक्षतभृताम् ॥
त्वदीयानां लीलाचलितलहरीणां व्यतिकरात्
पुनीते सोऽपि द्रागहह पवमानस्त्रिभुवनम् ॥३५॥

हे माता ! जो वायु फूलोंके अलभ्य सुगन्धिको हर लेती है और विरह रूपी शस्त्रसे दुःखी हृदयवालोंके प्राणोंको हर लेती है आश्चर्य है कि वही दुष्ट वायु लीलासे चञ्चल तेरी लहरोंको पाकर शीघ्र ही तीनों भुवनोंको पवित्र कर देती है (तुम्हारी महिमा अपार है) ॥ ३५ ॥

कियन्तः सन्त्येके नियतमिह लोकार्थघटकाः
परे पूतात्मानः कति च परलोकप्रणयिनः ॥
सुखं शेते मातस्तव खलु कृपातः पुनरयं
जगन्नाथः शश्वत्त्वयि निहितलोकद्वयभरः ॥३६॥

हे माता ! इस संसारमें कुछ लोग ऐसे हैं जो परोपकारमें ही लगे रहते है। अथवा परोपकार द्वारा ही स्वर्ग लोग चाहते हैं अथवा दूसरेके लिए अर्थ प्रापक हैं। और कुछ लोग हमेशा तपस्या आदि द्वारा स्वर्गकी इच्छा करते हैं। परन्तु यह (जगन्नाथ) हमेशाके लिए दोनो लोकका भार तुम्हारे ऊपर रखकर तेरी कृपासे सुख-पूर्वक सोता है ॥ ३६ ॥

भवत्या हि व्रात्याधमपतितया खण्डपरिषत्-
परित्राणस्नेहः श्लथयितुमशक्यः खलु यथा ॥

ममाप्येवं प्रेमा दुरितनिवहेष्वम्ब जगति
स्वभावोऽय सर्वैरपि खलु यतो दुष्परिहरः ॥३७॥

हे माता! जैसे संस्कार हीन और अधम पापियोंको उद्धार करने में तुझे प्रेम है और उसे (उस प्रेम को) नहीं छोड़ सकती उसी तरह मुझे भी पापोंको करने में प्रेम है और मैं भी इससे नहीं हट सकता क्यों कि किसीका स्वभाव पलट नहीं सकता ॥ ३७ ॥

प्रदोषान्तर्नृत्यत्पुरमथनलीलोद्धृतजटा
तटाभोगप्रेङ्खल्लहरिभुजसन्तानविधुतिः ॥
बिलक्रोडक्रीडज्जलडमरुटङ्कारसुभग-
स्तिरोधत्तां तापं त्रिदशतटिनीताण्डवविधिः ॥३८॥

प्रदोष कालमें नाचते हुए शङ्करजीकी लीलासे उठती हुई जटासे गङ्गाजीकी चञ्चल लहरी रूपी भुजायें ताल देरही हैं और पर्वत आदिके कन्दराओंमें प्रवेश करनेवाले (गङ्गाजी के) जलका शब्द डमरू ऐसा सुन्दर शब्द कर रहा है। ऐसी देवनदी गङ्गाजीका ताण्डव नृत्य भक्तोंके सन्तापको अथवा मेरे ताप को नाश करे ॥ ३८ ॥

सदैव त्वय्येवार्पितकुशलचिन्ताभरमिमं
यदि त्वं मामम्ब त्यजसि समयेऽस्मिन्सुविषमे ॥
तदा विश्वासोऽयं त्रिभुवनतलादस्तमयते
निराधारा चेयं भवति खलु निर्व्याजकरुणा ॥३९॥

हे माता! कुशल होने की (मोक्षप्राप्त होने की) चिन्ता का भार तेरे ऊपर रखते हुए मुझे इस अत्यन्त क्लेशार्तके समय यदि त्याग देगी तो यह विश्वास (तू सदा पतितोंका उद्धार करती है) तीनो लोकसे उठ जायगा। और तेरी निष्कपट करुणा निश्चय ही निराधार हो जायगी ॥ ३९ ॥

कपर्दादुल्लस्य प्रणयमिलदर्धाङ्गयुवतेः
पुरारेः प्रेङ्खन्त्यो मृदुलतरसीमन्तसरणौ ॥
भवान्या सापत्न्यस्फुरितनयनं कोमलरुचा
करेणाक्षिप्तास्ते जननि विजयन्तां लहरयः ॥४०॥

हे माता ! प्रेमसे शिवजीके आधे अङ्गमें मिली हुई पार्वतीजी के अत्यन्त कोमल शिरोभूषण केशपाशोंमें जब महादेवजीके जटासे उछलकर तेरी लहरें पड़ती हैं तब पार्वतीजी इनको कोमल कर कमलोंसे हटा देती है । और उनकी आँखे सौतिआ-डाह से फड़कने लगती हैं ऐसी तेरी लहरें जय पावे ॥ ४० ॥

प्रपद्यन्ते लोकाः कति न भवतीमत्रभवती-
मुपाधिस्तत्रायं स्फुरति यदभीष्टं वितरसि ॥
शपे तुभ्यं मातर्मम तु पुनरात्मा सुरधुनि
स्वभावादेव त्वय्यमितमनुरागं विधृतवान् ॥४१॥

हे माता ! परम पूजनीय आपके पास कौन कौन पुरुष नहीं आते हैं (अर्थात् सब आते हैं) कारण यह है कि उनके अभीष्ट फलको तुम देती हो । किन्तु हे भागीरथि ! मैं शपथपूर्वक कहता हूं कि मेरी आत्मा स्वभावतः तेरेमें अत्यन्त अनुरक्त है ॥ ४१ ॥

ललाटे या लोकैरिह खलु सलीलं तिलकिता
तमो हन्तुं धत्ते तरुणतरमार्तण्डतुलनाम् ॥
विलुम्पन्ती सद्यो विधिलिखितदुर्वर्णसरणिं
त्वदीया सा मृत्स्ना मम हरतु कृत्स्नामपि शुचम्४२

हे माता ! इस संसारमें लोगोंके मस्तकमें लीलापूर्वक तिलक होकर (अविद्यारूपी) अन्धकार को दोपहरके सूर्यके समान नाश करती है और ब्रह्माके लिखे कुत्सित अक्षर पङ्क्तिको (दुर्भाग्य सूचक

अक्षरों को) शीघ्र ही मिटा देती है ऐसी तेरी वह मिट्टी मेरे समस्त शोकको नाश करे ॥ ४२ ॥

नरान्मूढांस्तत्तज्जनपदसमासक्तमनसो
हसन्तः सोल्लासं विकचकुसुमव्रातमिषतः ॥
पुनानाः सौरभ्यैः सततमलिनो नित्यमलिना-
न्सखायो नः सन्तु त्रिदशतटिनीतीरतरवः ॥४३॥

हे माता! तेरे तीरस्थ वृक्ष हम भक्तजनोंके मित्र होवें जो (वृक्ष) खिले हुए फूलोंके बहानेसे अपने-अपने देशोंमें मन लगा है जिनका उन मूर्ख मनुष्यों को हँसते हैं। तथा हमेशा मलिन (जड़से काले) भ्रमरोंको भी अपने पुष्पोंके सुगन्धि से नित्य पवित्र करते हैं ॥ ४३ ॥

यजन्त्येके देवान्कठिनतरसेवांस्तदपरे
वितानव्यासक्ता यमनियमरक्ताः कतिपये ॥
अहं तु त्वन्नामस्मरणभृतकामस्त्रिपथगे
जगज्जालं जाने जननि तृणजालेन सदृशम् ॥४४॥

हे त्रिपथगामिनि! (स्वर्गलोक पाताललोक मृत्युलोक इन तीनों लोकमें जानेवाली) कुछ लोग अत्यन्त कठिन सेवाले देवताओंको पूजते हैं और कितने सपरिश्रम यज्ञ करते हैं और कितने यम नियम इत्यादि (अष्टाङ्ग योग) साधन करते हैं परन्तु हे माता! मैं तो तेरे नामके स्मरणमात्र से सकल मनोरथ सिद्ध पाकर संसार-रूपी जालको तृणोंके समान समझता हूं ॥ ४४ ॥

अविश्रान्तं जन्मावधि सुकृतजन्मार्जनकृतां
सतां श्रेयः कर्तुं कति न कृतिनः सन्ति विबुधाः
निरस्तालम्बानामकृतसुकृतानां तु भवतीं
विनामुष्मिँल्लोके न परमवलोके हितकरम् ॥४५॥

हे माता ! जन्म से लेकर अन्तकाल तक निरन्तर पुण्य करनेवाले साधुओंके कल्याण करनेके लिए क्या अनेक देवता नहीं हैं? (अर्थात् सब देवता हैं) परन्तु निरावलम्बी पापियोंके कल्याण करनेके लिए इस लोकमें आपके सिवाय दूसरे किसी को भी मैं नही देखता (इसी लिये मैं आपकी शरणमें आया हूं) ॥ ४५ ॥

पयः पीत्वा मातस्तव सपदि यातः सहचरै-
र्विमूढैः संरन्तुं क्वचिदपि न विश्रान्तिमगमम् ।
इदानीमुत्सङ्गे मृदुपवनसञ्चारशिशिरे
चिरादुन्निद्रं मां सदयहृदये शायय चिरम् ॥ ४६ ॥

हे माता ! केवल प्यास बुझानेके लिए ही तेरा जल पीकर शीघ्र मैं विना शोचे अपने मूढ साथियोंके साथ आनन्द करनेके लिए चलदिया लेकिन कहीं भी मुझे शान्ति नहीं मिली। (अतः) हे अनुकम्पार्द्रहृदये ! बहुत दिनोंसे जागे हुए मुझ (जगन्नाथ) को अब मन्द-वायुके चलनेसे शीतल अपनी गोदमें निरन्तर सुलाइये ॥ ४६ ॥

बधान द्रागेव द्रढिमरमणीयं परिकरं
किरीटे बालेन्दुं नियमय पुनः पन्नगगणैः ।
न कुर्यास्त्वं हेलामितरजनसाधारणतया
जगन्नाथस्यायं सुरधुनि समुद्धारसमयः ॥४७॥

हे गङ्गे ! साधारण भक्त समझकर आप मेरा त्याग मत कीजिये। मुझ महापतित जगन्नाथको उद्धार करनेका समय आगया (परन्तु मुझे उद्धार करनेमें आपको कठिन परश्रम करना होगा इसलिए) हे सुरधुनि ! सुन्दर तथा मजबूत वस्त्रसे अपने कमरको कसकर बांधिये और मुकुटके बालचन्द्रको भी सर्पोंके बन्धनसे सम्हालकर रखिये (परिश्रम करनेसे कहीं गिरन जांय) ॥ ४७ ॥

शरच्चन्द्रश्वेतां शशिशकलश्वेतालमुकुटां
करैः कुम्भाम्भोजे वरभयनिरासौ च दधतीम् ।
सुधाधाराकाराभरणवसनां शुभ्रमकर-
स्थितां त्वां ये ध्यायन्त्युदयति न तेषां परिभवः ॥४८

हे सुरधुनि ! अर्धचन्द्र (बालचन्द्र) और श्वेतसर्पसे सुशोभित मुकुट एवं चारों हाथों में कलश, कमल, वरदान और अभयदानके धारण किये हुई, अमृतधाराके समान अति शुभ्र वस्त्र, आभूषणादि से विभूषित, श्वेत मत्स्यारूढ शरच्चन्द्रके सदृश देदीप्यमान आपकी मूर्त्तिका जो ध्यान करते हैं वे सदा सुखी रहते हैं ॥ ४८ ॥

दरस्मितसमुल्लसद्वदनकान्तिपूरामृतै-
र्भवज्ज्वलनभर्जितानपि शमूर्जयन्ती नरान् ॥
चिदेकमयचन्द्रिकाचयचमत्कृतिं तन्वती
तनोतु मम शं तनोः सपदि शन्तनोरङ्गना ॥४९

सुधा—रूपी मन्द मुखमुसकानसे संसार रूपी अग्निसे दग्ध (दुःखी) मनुष्योंको बचाने वाली तथा चित्स्वरूप चन्द्रिकाओं (असंख्य चन्द्रमाओंके समान) अत्यन्त प्रकाशवती, राजा शन्तनु की (श्रीगङ्गाजी) शीघ्र मेरे शरीरके सुखको बढ़ावें ॥ ४९ ॥

मन्त्रैर्मीलितमौषधैर्मुकुलितं त्रस्तं सुराणां गणैः
स्रस्तं सान्द्रसुधारसैर्विदलितं गारुत्मतैर्ग्रावभिः ।
वीचिक्षालितकालियाहितपदे स्वर्लोककल्लोलिनि,
त्वं तापं शमयाधुना मम भवव्यालावलीढात्मनः ॥५

हे कालानागके शत्रु श्रीविष्णुभगवानके चरणों को अपनी तरङ्ग से धोने वाली सुरधुनि ! जिसको दूर करनेमें बहुतसे म

चिकित्सकोंके औखधियां, गरुत्मत प्रस्थर और सुधारस भी समर्थ नहीं होते तथा जिस असाध्यसे देवतालोग भी डरतेहैं ऐसे संसार रूपी सर्पसे (पापसे) डसी हुई मेरी आत्माके तापोंको अब आप शान्त किजिये ॥ ५० ॥

द्यूते नागेन्द्रकृत्तिप्रमथगणमणिश्रेणिनन्दीन्दुमुख्यं
सर्वस्वं हारयित्वा स्वमथ पुरभिदि द्राक्पणीकर्तुकामे ॥
साकूतं हैमवत्या मृदुलहसितया वीक्षितायास्तवाम्ब
व्यालोलोल्लासिवल्गल्लहरिनटघटीताण्डवं नः पुनातु ५१

हे माता ! हिमालयकी कन्या पार्वतीके साथ जूआ खेलनेमें शङ्करजीने वासुकि, गजचर्म, प्रथमगण नामक परिषद, रुद्राक्षादि मणियोंकी माला, नन्दी नामका वाहन और शिरोभूषण चन्द्रमा आदि सर्वस्वोंको हारकर जब अपनेको भी दावेमें लगानेकी इच्छा की तब पार्वतीजीने मृदुलहास करके अभिप्राय सूचक (अभी तक तुम गङ्गा महादेवजीके शिरोभूषण होकर मुझे अपमानित करतीथी अब इन्हे जीतकर तुम्हे दासी बनाऊँगी) तिरछी नजरोंसे आपको देखने लगी। उस समय नर्त्तनप्रिय श्रीशङ्करजीको द्यूतक्रीड़ासे विमुख करनेके लिये अत्यन्त उत्फुल्ल शोभायमान तरङ्गोंसे जो आपका ताण्डव नृत्य हुआ वह हमलोगोंको पवित्र करे ॥ ५१ ॥

विभूषितानङ्गरिपूत्तमाङ्गा सद्यः कृतानेकजनार्तिभङ्गा ।
मनोहरोत्तुङ्गचलत्तरङ्गा गङ्गा ममाङ्गान्यमलीकरोतु॥५२॥

कामदेवके शत्रु श्रीशङ्करजीके शिरोभूषण तथा पीड़ितोंके दुःख-को शीघ्र दूर करने वाली, अत्यन्त शोभायमान उन्नत तरङ्गों से युक्त श्रीगङ्गाजी मेरे शरीरको पवित्र करें ॥ ५२ ॥

इमां पीयूषलहरीं जगन्नाथेन निर्मिताम्।
यः पठेत्तस्य सर्वत्र जायन्ते सुखसम्पदः॥ ५३॥

पण्डितराज जगन्नाथकी रची हुई इस 'पीयूषलहरी' (गङ्गालहरी) को जो पढ़ते हैं उन्हे सब प्रकारकी सुख-सम्पत्ति मिलती है॥ ५३॥

इति पण्डित श्रीविश्वेश्वरझा कृत गङ्गालहरीकी निर्मलानामक भाषा टीका समाप्त हुई।

प्राप्तिस्थानम्—
चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय,
बनारस सिटी।

Printed at the Vidya Vils Press, Benres. 1940.

शङ्कराचार्यकृतगङ्गाष्टकम् ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ भगवति तव तीरे नीरमात्राशनोऽहं विगत-
विषयतृष्णः कृष्णमाराधयामि । सकलकलुषभङ्गे स्वर्गसोपानसङ्गे
तरलतरतरङ्गे देवि गङ्गे प्रसीद ॥ १ ॥ भगवति भवलीलामौलिमाले
तवाम्भः कणमणुपरिमाणं प्राणिनो ये स्पृशन्ति । अमरनगरनारीचामर-
ग्राहिणीनां विगतकलिकलङ्कातङ्कमङ्के लुठन्ति ॥ २ ॥ ब्रह्माण्डं
खण्डयन्ती हरशिरसि जटावल्लिमुल्लासयन्ती स्वर्लोकादापतन्ती कनक-
गिरिगुहागण्डशैलात्स्खलन्ती । क्षोणी पृष्ठे लुठन्ती दुरितचयचमू-
र्निर्भरं भर्त्सयन्ती पाथोधिं पूरयन्ती सुरनगरसरित्पावनी नः पुनातु
॥ ३ ॥ मज्जन्मातङ्गकुम्भच्युतमदमदिरामोदमत्तालिजालं स्नानैः
सिद्धाङ्गनानां कुचयुगविगलत्कुङ्कुमासङ्गपिङ्गम् । सायम्प्रातर्मुनीनां
कुशकुसुमचयैश्छन्नतीरस्थनीरं पायान्नो गाङ्गमम्भः करिकलभकरा-
क्रान्तरंहस्तरङ्गम् ॥ ४ ॥ आदावादिपितामहस्य निगमव्यापारपात्रे
जलं पश्चात्पन्नगशायिनो भगवतः पादोदकं पावनम् । भूयः
शम्भुजटाविभूषणमणिर्जह्नोर्महर्षेरियं कन्या कल्मषनाशिनी भगवती
भागीरथी दृश्यते ॥ ५ ॥ शैलेन्द्रादवतारिणी निजजले मज्जज्जनो-
त्तारिणी पारावारविहारिणी भवभयश्रेणीसमुत्सारिणी । शेषाहेरनु-
कारिणी हरशिरोवल्लीदलाकारिणी काशीप्रान्तविहारिणी विजयते
गङ्गा मनोहारिणी ॥ ६ ॥ कुतोऽवीचिर्वीचिस्तव यदि गता लोचनपथं
त्वमापीता पीताम्बरपुरनिवासं वितरसि । त्वदुत्सङ्गे गङ्गे पतति
यदि कायस्तनुभृतां तदा मातः शातक्रतवपदलाभोऽप्यतिलघुः ॥ ७ ॥
गङ्गे त्रैलोक्यसारे सकलसुरवधूधौतविस्तीर्णतोये पूर्णब्रह्मस्वरूपे
हरिचरणरजोहारिणि स्वर्गमार्गे । प्रायश्चित्तं यदि स्यात्तव जलक-
णिका ब्रह्महत्यादिपापे कस्त्वां स्तोतुं समर्थस्त्रिजगदघहरे देवि गङ्गे
प्रसीद ॥ ८ ॥ मातर्जाह्नवि शम्भुसङ्गवलिते मौलौ निधायाञ्जलिं
त्वत्तीरे वपुषोऽवसानसमये नारायणाङ्घ्रिद्वयम् । सानन्दं स्मरतो
भविष्यति मम प्राणप्रयाणोत्सवो भूयाद्भक्तिरविच्युता हरिहराद्वै-
तात्मिका शाश्वती ॥ ९ ॥ गङ्गाष्टकमिदं पुण्यं यः पठेत्प्रयतो नरः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ १० ॥ इति श्रीमत्

परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं गङ्गाष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

वाल्मीकिकृतगङ्गाष्टकम् ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ मातः शैलसुतासपत्नि वसुधाश्रृङ्गारहारावलि स्वर्गारोहणवैजयन्ति भवतीं भागीरथि प्रार्थये । त्वत्तीरे वसत-स्त्वदम्बु पिबतस्त्वद्वीचिषु प्रेङ्खतस्त्वन्नाम स्मरतस्त्वदर्पितदृशः स्यान्मे शरीरव्ययः ॥ १ ॥ त्वत्तीरे तरुकोटरान्तरगतो गङ्गे विहङ्गो वरं त्वन्नीरे नरकान्तकारिणि वरं मत्स्योऽथवा कच्छपः । नैवान्यत्र मदान्धसिन्धुरघटासङ्घट्टघंटारणत्कारत्रस्तसमस्तवैरिवनितालब्धस्तु-तिर्भूपतिः ॥ २ ॥ उक्षा पक्षी तुरग उरगः कोऽपि वा वारणो वाऽवारणस्यां जननमरणक्लेशदुःखासहिष्णुः । न त्वन्यत्र प्रवि-रलरणत्कङ्कणक्वाणमिश्रं वारस्त्रीभिश्चमरमरुता वीजितो भूमि-पालः ॥ ३ ॥ काकैर्निष्कुषितं श्वभिः कवलितं गोमायुभिर्लुण्ठितं स्रो-तोभिश्चलितं तटाम्बुलुलितं वीचीभिरान्दोलितम् । दिव्यस्त्रीकरचारु-चामरमरुत्संवीज्यमानः कदा द्रक्ष्येऽहं परमेश्वरि त्रिपथगे भागीरथि स्वं वपुः ॥ ४ ॥ अभिनवबिसवल्ली पादपद्मस्य विष्णोर्मदनमथनमौले-र्मालतीपुष्पमाला । जयति जयपताका काप्यसौ मोक्षलक्ष्म्याः क्षपितकलिकलङ्का जाह्नवी नः पुनातु ॥ ५ ॥ एतत्तालतमालसाल-सरलव्यालोलवल्लीलताच्छन्नं सूर्यकरप्रतापरहितं शङ्खेन्दुकुन्दोज्ज्व-लम् । गन्धर्वामरसिद्धकिन्नरवधूत्तुङ्गस्तनास्फालितं स्नानाय प्रतिवासरं भवतु मे गाङ्गं जलं निर्मलम् ॥ ६ ॥ गाङ्गं वारि मनोहारि मुरारिचरणच्युतम् । त्रिपुरारिशिरश्चारि पापहारि पुनातु माम् ॥७॥ पापापहारि दुरितारि तरङ्गधारि शैलप्रचारि गिरिराजगुहाविदारि । झङ्कारकारि हरिपादरजोपहारि गाङ्गं पुनातु सततं शुभकारि वारि ॥ ८ ॥ गङ्गाष्टकं पठति यः प्रयतः प्रभाते वाल्मीकिना विरचितं शुभदं मनुष्यः । प्रक्षाल्य गात्रकलिकल्मषपंकमाशु मोक्षं लभेत्पतति नैव नरो भवाब्धौ ॥९॥ इति श्रीवाल्मीकिविरचितं गङ्गाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

शीघ्रता करें ! अनमोल रत्न !! प्रकाशित हो गया !!!

"श्रीकोष"

(हिन्दी से संस्कृत जेबी कोष)

प्रिय छात्र गण !

यों तो कोश ग्रन्थों में संस्कृत से हिन्दी के तो कई एक कोष ग्रन्थ देखने में आते हैं मगर विद्यार्थियों के उपयुक्त हिन्दी से संस्कृत अनुवाद करने के लिए कोई भी हिन्दी-संस्कृत कोश प्रकाशित नहीं हुआ था। इस भारी न्यूनता को दूर करने के लिए हमने "श्रीकोष" (हिन्दी से संस्कृत जेबी कोष) का प्रकाशन किया है इस "श्रीकोष" के द्वारा आपको एक शब्द के कई अर्थ एवं पर्याय पर्याप्तरूपेण मिल सकेंगे। इसमें लिङ्ग, क्रिया, क्रियाविशेषण, संज्ञा, भाववाचकसंज्ञा, आदि का निर्देश समुचितरूप से दिया गया है। 'एफसरे, कुर्सी, टेबुल, आलमारी, बेंच, म्युन्सिपलिटी, कचहरी, जज, कोतवाल, थानेदार' आदि वर्तमान चलते-फिरते शब्दों की ओर (जिनकी संस्कृत बनाने में आप लोगों को अत्यन्त कठिनाई पड़ती थी) विशेष ध्यान दिया गया है। यह 'श्रीकोष' संस्कृत तथा अंग्रेजी पढ़ने वाले छात्रों का समानरूप से ध्यान रख कर ही तैयार किया गया है। इसलिए 'श्रीकोष' दोनों के बड़े काम की पुस्तक हो गयी है। अब संस्कृत तथा अंग्रेजी के छात्रों को लेशमात्र भी हताश होने की आवश्यकता नहीं। आनन्द से इस जेबी "श्रीकोष" के द्वारा अनुवाद में सफलता प्राप्त कर परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाइए।

हे छात्रजन ! यदि चाहते, अनुवाद में उत्तीर्णता,
'श्रीकोष' से करिये तुरत, व्युत्पत्ति की विस्तीर्णता।
श्रीकोष वालो से यथा, दारिद्र्य डरता है सदा,
'श्रीकोष' वालों से तथा, अज्ञान भगता सर्वदा ॥

मूल्य ॥)

प्राप्तिस्थानम्—चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, बनारस।